अध्याय - 1
साहित्यिक व्यंग्य - परिभाषा और विविध दिशाएँ
अध्याय-१

तार्किक व्यंग्य - परिभाषा और विविध विवादय

अध्याय का ग्रन्थ-पक्ष:-

यह तौ सर्वविदित है कि मनुष्य की अभिव्यक्ति का साधन वाणी है । वाणी
से ही वह चेतन वन ताना कार्य व्यापारों से संबद्ध अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है ।
अपने राग-द्वेष तथा उद्देश मनोभावों को तथा बुद्धि विवेक और तर्क से अर्थ-सिद्ध विचारों
को “पर” के प्रति प्रकट करके वह अपने “स्व” की तुषित करता है ।

शब्द और अर्थ-- डॉ. उद्योगिन्द्र नडनागर के मत में "वाणी भाषा की मूल और
अन्तिम अवयुति है । भाषा समय उच्चरित तार्किक ध्वनि है । वाणी का प्रकट त्या
अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए समय उच्चरित ध्वनि है ।"। शब्द से पूर्ण अर्थ की
अभिव्यक्ति तभी होती है जब फिर कार्यकाल के उसका प्रयोग हो और उस अर्थ की
अभिव्यक्ति में वह समृद्ध हो जाय ।

शब्द की प्रतीकात्मा - संकेत ग्रहण:- ग्रन्थिय विवेचन से यह बात स्पष्ट है
जास्ती कि शब्द अर्थ का प्रतीक भी है और अर्थ का वाहक भी । जब शब्द का उपयोग
अर्थ के पूर्वत्तो के तौर पर होने लगता है तब शब्द व्यंग्य की समाप्ति का स्पर्श करने
लगता है । दूसरे शब्दों में, व्यंग्य के पूर्वो में भी शब्द अर्थ का प्रतीक और अर्थ का
वाहक होता है । पर यह बात महत्त्वपूर्ण है कि उसके उपयोग में बुद्धि की विशेष सहायता
तथा स्पर्श रहती है, जो शब्द में तथा वाक्य में पदस्थत सर्वावधि में प्रतिभातित होकर
व्यंग्यार्थ को प्रकट करती है ।

1. "भाषा अनुकूलन", डॉ- उद्योगिन्द्र नडनागर, पृष्ठ-२।
शब्द शक्तियाँ :- अभिव्यक्ति, लक्षणा, व्याख्या :-

भारतीय काव्यशास्त्र की परंतु प्रति एक शब्द के पुरुषोत्तर से एक ही
निधित्वात अर्थ का बोध न होकर मिलन अथवा अनेक अर्थों या भावों का बोध होता
है। व्यंग्य में भी व्यंग्यकार की वक्तव्यित्रि शब्द का विशेष अर्थ में पुरुषोत्तर करता जो
शब्द के मूल अर्थ से मिलन और व्याख्या होता है। आधुनिक रैल्डी विद्वान भी इस सत्य
का परिष्कर करता है।

लेखक गृहण :- शब्दों के अर्थ गृहण से संबंधित दूसरा पहलू "लेखक" है। लेखक गृहण
शब्द के दारा अर्थ के बोध से है। अमूर्त शब्द का अमूर्त ही अर्थ होता या
अमूर्त शब्द अमूर्त सांकेतिक अर्थ को ही व्यक्त करेगा जो लेखक गृहण कहलाता है।

शब्द की तीन शक्तियाँ :- अभिव्यक्ति, लक्षणा और व्याख्या मानी गई है।
"अभिव्यक्ति" प्रतिकृति अर्थ का बोध करानेवाली शक्ति है। प्रतिकृति अर्थ में भी व्यंग्य ही
तकता है। लक्षणा शब्द की तरह शक्ति है जिसमें व्याख्यार्थ अथवा अन्य अर्थ
लक्षण की होती है। व्यंग्यभाष्कर्थ में लक्षण का महत्त्व स्वरूप है।
पाओंताप्त विद्वानों ने यथार्थ शब्द तथा अर्थ का शृंखला विवेचन नहीं किया है, परन्तु
वे भी लक्षणा शक्ति को associative meaning साइडियम में अथवतं महत्त्वपूर्ण
मानते हैं। योगोपार्क विद्वानों का "मेनोपेसाइज" प्रयोगरती लक्षणा ही है।

व्याख्या शक्ति :- साधारण में शब्द और अर्थ का इन्ते महत्त्व नहीं है, जिन्तना शब्द
तथा अर्थ के दारा व्याख्या प्रकृति का। व्याख्या शक्ति से व्यंग्यार्थ की प्रतिगति
होती है। यह अर्थ और शब्द दोनों के दारा संभाल है। जहाँ भी व्याख्या होगी,
वहाँ मूल में अभिव्यक्ति या लक्षणा अवश्य होगी। शब्द में अर्थ होता है और उस अर्थ में
भी अर्थ होता है। यही व्यंग्यार्थ है suggestive meaning जो व्याख्या शक्ति
वे उद्दीपक है और जिसे सामान्य व्याख्या नहीं समझ सकता।
व्यंजना और ध्वनि:- व्यंजना का आधार ध्वनि है। दूसरे शब्दों में भारतीय काव्य-शास्त्र में "व्यंजना" का प्रयोग जिस अर्थ में हुआ है उसका विकसित यथा "ध्वनि" है जिसकी अर्थ दिशाओं में विनिमय अध्ययन की अपेक्षा रखती है।

आयामों ने ध्वनि को ही काव्य की आत्मा कहा है। काव्यात्मक के अनुसार एक संदर्भ में विभिन्न भारतीय आचार्यों ने "ध्वनि" पर अपने विचार फूट किये हैं। ध्वन्यालोक के अनुसार ध्वनि का अभिव्यक्ति है - जहाँ अर्थ स्वर्ण को तथा शब्द अपने वाचारों को भर्ती करके उस अर्थ को न्यूनतायमान अर्थ को ध्वनि बनाकर कहते हैं। उस काव्य विशेष को आचार्यों ने ध्वनि कहा है। लोगों के कथन है कि ध्वनि-काव्य एक ऐसा काव्य विशेष है कि वहाँ शब्द का भी ध्वनि व्याख्यात होता है और अर्थ का भी। अर्थात् वाच्य अर्थ भी ध्वनि करता है और शब्द भी। यही नहीं, ध्वनि अर्थ भी ध्वनि होता है। आनन्दकल्प की वृत्तियों में काव्य, शब्द, अर्थ और शब्द व्याख्यात सभी ध्वनि हैं। ध्वनि शब्द का ध्वनि स्वभाव पायी प्रकार से की गई है। जो व्यंग्यक शब्द ध्वनि करे या कराये वह ध्वनि है। 2$\frac{1}{3}$ ध्वनि करने या करानेवाला व्यंजक अर्थ ध्वनि है। 3$\frac{1}{3}$ जो ध्वनि किया जाय वह ध्वनि है। 4$\frac{1}{3}$ ध्वनि के उपकरण को भी ध्वनि कहा जाता है। 5$\frac{1}{3}$ जिस काव्य में वस्तु, अक्षर और संस्कृति ध्वनि हैं उस काव्य को भी ध्वनि काव्य कहा जाता है। स्पष्ट है कि ध्वनि शब्द का उपयोग शब्द, व्यंजक अर्थ, ध्वनि अर्थ, ध्वनि ग्रंथी और ध्वनि रूपक काव्य के लिए होता है।

जिसे क्या ध्वनि कहते हैं वह है ध्वनि अर्थ। ध्वनि के तीन मुख्य भेदों में रस, ध्वनि अलंकार ध्वनि और वस्तु ध्वनि की गणना की जाती है। रस, अलंकार और वस्तु ध्वनि इस संदर्भ में ध्वनि के लिए प्रतीत होता है अर्थात् रस, अलंकार और वस्तु की यहाँ ध्वंजना होती है। यहाँ शब्दों का ध्वंजना ध्वंजन है। जब ध्वंजन ध्वनि अर्थ से अलग अर्थ होता है, साहित्य दर्पण के अनुसार तब उसे ध्वनि कहते हैं।

1. काव्यस्तात्मा ध्वनिरिति, ध्वन्यालोक, पृष्ठ-1111.
व्यंग्य अर्थ की अतिप्रमुखता का अर्थ है चारस्त या रमणीयता। ध्वनि का अर्थ है व्यंग्य।
व्यंग्य शब्द की व्युत्पत्ति है – वि + अनु + प्यत। व्यंग्य विशेषण है और इसे
उपलक्षित अर्थ, व्यंग्योक्ति, परोक्ष संकेत भी कहते हैं।

आचार्य आनन्दकांते ने "वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ के भेद का स्पष्टीकरण निम्न-
लिखित तथ्य में किया है – "अर्थ समझनेवाले ब्रह्मोद्वार विगत अर्थ का बान
शब्द, कोष, व्यक्तिक आदि जानेवाले को ही लक्ष्यता है, लेकिन व्यंग्य अर्थ सहृदय
को ही पूर्तित होता है। उक्त दोनों अर्थ में चारस्त का भी भेद है। जहाँ वाच्य
अर्थ मिश्रित मूल रूप होता है वहाँ व्यंग्य अर्थ विभिन्न भी होता है। व्यंग्यार्थ
प्रतिभावना ही समझी है। कार्य की दृष्टि से जहाँ वाच्य अर्थ केवल वस्तु का बोध
cराता है वहाँ व्यंग्य-अर्थ चमत्कार और आनंद का आत्मावादन कराता है।

व्यंग्य और रस – व्यंग्य के सहारे जिस व्यंग्यार्थ का बान होता है, वही रस
c का कारण होता है। और यही ध्वनि और रस का वास्तविक सम्बन्ध है। "रस"
कभी वाच्य नहीं होता, वह सदैव "व्यंग्य" ही होता है।

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार "रस आत्माव जन्य आनंद है।" 1 भरत गुप्ते
किती महत्त्व अर्थ की रहस्यी मान्यता ही नहीं। 2 डॉ. नगेन्द्र रस तथा ध्वनि को पूर्ण करना
असंभव मानते हैं। उनके अनुसार "ध्वनि और रस का सहयोग कल्पना तथा भावना
cका सहयोग है।" 3

इत्यादि पूर्वक हम देखो कि जहाँ ध्वनि होगी वहाँ रस अवकाश होगा और जहाँ
ध्वनि न हो वहाँ व्यंग्य भी अवकाश होगा।

जहाँ तक व्यंग्य का प्रस्ताव है वह शब्द के द्वारा भी पूर्त होता है और अर्थ के
द्वारा भी। शब्द में अर्थ निर्देश होता है और उस अर्थ में भी एक गूढ्य अर्थ निर्देश हो।

1. विश्वनाथ – तारंगनाथ, पृष्ठ-3-11
2. "नहीं रसादृशक काव्यधर्म: पृष्ठती", भरत-नाट्यसृष्ट्र, अध्याय-6
3. डॉ. नगेन्द्र, रस सिद्धान्त, पृष्ठ-321.
हिंदी साहित्य में प्रश्न रचनाओं अन्यत्म प्राचीन काल से होती आ रही थी, इसलिए प्रथम में व्यंग्य की परंपरा भी प्राचीन है। ब्याप्ति है, व्यंग्य, व्यंग्य शक्ति की ही उपज होता है और व्यंग्य ध्वन्यालोककार के शब्दों में "वह सारस्वत शक्ति है जो महाकवियों को वास्तव देती है।" न

अन्य व्यंग्य परिभाषा और विविध आयाम

क्रमशः व्यंग्य की परिभाषा निम्न पुकार की गयी है: "डॉ. मार्गीलाल उपाध्याय के अनुसार "किसी व्यक्ति, संस्था अथवा समाज की विभाजन तथा वितरण की लक्ष्य कर किया गया शब्द पुड़ार या आक्षेप व्यंग्य होता है।" व्यंग्य के हाथ का वह कोड़ा है जिसके पुड़ार से व्यक्ति, संस्था या समाज सही मार्ग पर चलने की वाधा किया जा सकता है। यह केवल आक्षेप या उपेक्षा मात्र ही नहीं होता, मर्म में घुमाने-वाला तौर पर बाण होता है, जिसले उसका विकार अपनी न्यूनता को अनुभव करता हुआ अस्तधार कोर तिलिखिता रहता है।"

श्री. एल. जे. पटाक्के कैंट्रेंस मिड्वेस्ट विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी के प्रोफेसर थे। उन्होंने Comedy पुस्तक April 1948 में व्यंग्य-संबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण विचार पुस्तक लिखी है। वे लिखते हैं - "सेटपायर" शब्द वैलेटिन शब्द "Satura" जिसका अर्थ "गब्बरियाता" है।

1. सतिर्याती स्वाभाविक तद्दुर्दृष्टि।
2. व्यंग्य और भारतेन्दु पुरीन गय, डॉ. मार्गीलाल उपाध्याय, पृष्ठ-16
से विकसित हुआ है। "सैत्य" के कम से कम दो लघु विकसित दुर्दृष्टि थे, जिसका एक लघु बाद में भी पुष्पलित रहा और वह लघु पप्प-निःशंक के समान था। पुरातन काल में "सैत्य" शब्द "परनिन्दा" के अर्थ में प्रयुक्त होता था, और इतिहासिक अर्थ की लाया वर्तमान "सैत्य" शब्द पर भी पड़ी है। अब "सैत्य" में केवल परनिन्दा नहीं होती है, कुछ बातों में इंते फ़ेरे होता है, आलम्बन की रंगाई होती है, या आलम्बन की तुलना चिहड़ने योग्य, बदलाम या कार्यालयसूत्र दीप्त से की जाती है या बात का उलट दिया जाता है या उसे बातों में उड़ा दिया जाता है। १ "सैत्य" में वर्ण के एक पात्र को निष्प बनाया जाता है जैसे जी-बी-पा के "पिल्लैण्डर"। २ इन्दिरा नाटक में "पैरामूर" पात्र के माध्यम से मेडिकल डॉक्टरों पर व्याख्य किया गया है।

जबकि डॉ. शान्तारामी कहते हैं "व्याख्य किसी संस्था, समाज, व्यक्ति अथवा समूह की दुर्लभताओं तथा अनुपानों का उल्लिप्तन कर उस पर अध्ययन करता है।" २

शर्जन गर्ह के अनुसार "व्याख्य कुछ ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति या चर्चा है, जिसमें व्यक्ति तथा समाज की कप्तानियों, तुलनात्मक, कर्मी वर्ण कथाओं के अनुष्ठानों की तरीका अथवा कभी कभी पूर्णता: स्पष्ट गृहों में पुस्तक थोड़े हुए की जाती है। वह पूर्णता: अग्रेषम होते हुए ग्रंथी हो सकती है, निर्दय लगते हुए दयालू हो सकती है, पुस्तकारात्मक होते हुए तद्भव हो सकती है। मजबूत लगती हुई वैदिक हो सकती है।

---

1. Indeed, it (satire) originated in deliberately formless writing, the word means "hotch-potch". The Latin "satura" took at least two distinct forms, the more persistent was no more than an easy inverse. Quite early in its history it was used largely for invective and from this historical accident, the modern sense of the word is derived. What that sense is, is far from clear. It is not mere invective it involves some kind of distortion, it caricatures its object or compares it to something ridiculous or of ill repute or contemptible or stands on its head or drenches it merely in wit: Comedy, L.J.Potts, Page-153

2. हिन्दी नाटकों में हास्य तत्त्व - डॉंशान्तारामी, पृष्ठ-73
3. Satire in its literary form may be defined as the expression in adequate terms of the sense of amusement or disquest excited by the ridiculous or unseemly, provided that humour is a distinctly recognizable element and that the utterance is invested with literary form. Without humour, satire is invective; without literary form, it is mere clownish jeering. Archilochus, the first great master of satire, we seem to trace the elevation of the instrument of private ammosity to an element of public life: Encyclopaedia, Britannicca-20.
के बावे व्याख्या विक्षयादान और विश्लेषियाँ पर लाभा बौद्धिक प्रकार "व्यांग"
कहलाता है।

डा. पुतुलाल शुल्क के अनुसार "व्यांग - लक्ष करनेवाला चुर अद्विती, दरीका
का लक्षण, लक्ष चक्षु उच्च गौर्वात्मक और पूर्ण दृष्टि, एक सच्चा दो तीर-
कल्पित लक्ष दृष्टि पर एक अस्ति लक्ष पर - नामस हिंसा की तुलित, लोक में
व्यांगकार विदेशी और क्षमता रूप में लोकताप।" ¹

आपार्य रघुरामप्रसाद दिवेदी की धारणा है कि "व्यांग वह है जहाँ कहनेवाला
अध्यात्म में दंश रहा है और सुननेवाला तलमिला उठा हो और पिर भी कहनेवाले
को ज्वाला देता अपने को और भी उपहारात्मक बना लेता हो जाता हो।" ²

ढा. रामकुमार वर्मा ने व्यांग संबंधी अपने ग्रन्थ में कहा है- "अकरण करने
की धृष्टि से वस्तु स्थिति को विश्लेष कर उसके दास्य उत्पन्न करता"² हो व्यांग है।

हरिशंकर परशुराई के मत में "व्यांग जीवन से ताकालोकर करता है।.... जीवन
के प्रति व्यांगकार की उत्साही निविठता होती है नित्य गम्भीर रचनाकार की,
बल्कि ज्यादा ही। वह जीवन के प्रति दायित्व का अनुभव करता है।......
अङ्का व्यांग तहानुसार का सबसे उल्लेखनीय रूप होता है। हरिशंकर परशुराई:
लक्षायत का तारीह "कैपिताग पृष्ठ-20" ³

इस हस्त और व्यांग में अन्तर:

-----------------------------

tात्त्विक व्यांग का तही स्वरूप जानने के लिए हस्त और व्यांग का
पारस्परिक संबंध और भेद का सीमा निर्धारण अपेक्षित है।

"शरीर-वैज्ञानिकों के अनुसार हस्त का मुख्य उपयोग शरीर की अतिरिक्त शक्ति
1. आधुनिक व्यांग का स्रोत और दृष्टि-विविधता मिश्र द्वारा उद्धृत, पृ-18
2. डा. रामकुमार वर्मा : रिमेश्म, पृष्ठ-13
है । इसके अनुसार प्राणी अपने शरीर तथा मस्तिष्क में इकट्ठी जुड़ते से ज्यादा शक्ति का आयोजन करता है । इस शक्ति के न निकालने से मानसिक अभाव गैर अधीन हो सकता है । लेकिन निकाल देने पर इन अमान्यताओं को मुक्ति मिलती है ।

राेवत्रिक शास्त्रियों के मतानुसार हास्य कहीं उपयोगना देने हुए भावों से उत्पन्न होता है तो कहीं वह मनुष्य के अधि हृदय से बच्चे पाने के प्राकृतिक विधान के लय में बहार आता है ।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । हास्य विनोद का उसका आकर्षण भी भूक सामाजिक गुण है । हम चाहें दूसरों का परिहास करें, किसी के परिहास का पात्र बनना नहीं चाहते । परंतु परिहास करने के साथ ही साथ परिहास किये भी जाने ते व्यक्ति स्वयं सुधर सकता है । यहीं पर व्यंग्य से हास्य की भिन्नता महत्त्व होती है । हास्य का हृदय से लंबंध रखने के कारण उसमें सहानुभूति की मात्रा ज्यादा होती है, जहाँ व्यंग्य में इसका अभाव ता हो जाता है । वैसे ही हास्य में जब मनोरंजन मात्र भी क्षय हो सकता है, विभिन्न व्यंग्य में मनोरंजन के साथ ही साथ सुधार का भी क्षय अवक्षय रहना है ।

"हास्य रस का स्थायी भाव हास है ।" "हास" एक रागमूलक भाव माना जाता है और इसके रस के बाद एक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । मनोवैज्ञानिकों ने इतनी मानता कि मूल प्रूढ़ितियों का सूत्र में रखा है । हास्य जीवन का महत्वपूर्ण अंग रहा है । यह जीवन के लिए आवश्यक भी है, और जीवन के लिए आवश्यक होने के कारण यह साहित्य का भी अंग रहा है । गौम्भीर्य से गौम्भीर्य विनोदों और विवाहों में भी हास्य या विनोद उनके मानसिक संतुलन को बनाये रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक माना जाता है । यदि उसमें विनोद का समृद्धित मात्रा न रहती तो वे पागल हो गये होते ।

1. दरोहर साहित्य में हास्य-रस-डॉ. बरसामेलाल चौधरी
2. डॉ. बलकेश प्रसाद मिश्र-हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य पुस्तक व हास्य का निवेदन लेख, पृष्ठ-10
A continued gravity keeps the mind too much bent. We must refresh it sometimes - Dryden.
का उत्स बढ़े न कहा देखना में है । पूर्वों भी जब कोई व्यक्ति अनुपातिता की या अपेक्षा व्यक्ति से हटी हुई कोई बात देखता है तो वह हृद पड़ता है । व्यंगकार
यथाप्रयत्न इसी अनुपात होना या असामंजस्य को पकडने की कोशिश करता है । परंतु वह
वह हास्य की तुलना के लिए नहीं लिखना उसे रोग, रोग का रंग, लक्षण और निदान सभी के
लिए लिखना पड़ता है ।** संकेत में हास्य और व्यंग के आंत को
इस पुकार समझना जा तकता है कि हास्य वह होता है जिसका एकमत्र उद्देश्य
हास्य की भावना की तुलना है । जब पहले हास्य जब तोहदेश्य वन अवता है 
तर 

पुराणी यूण के साहित्य में हास्य और व्यंग दुखावा भाई को तरह साथ-साथ
वहते हैं । एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती । इतिहास भी हास्य व्यंग
का अंग है । हास्य व्यंग को हलचल करता है । हलचल इस तुलना के लिए उसके कारण
के पुष्टाच में क्षति होती है । व्यंग का वयोग वार्तावद्य के लिए होने होते हैं और आज़ूरोग के कारण 
हास्य में इन सबकी अपेक्षा पुरातत्त्व और निम्नता की मात्रा अधिक होती है । आज़ूरोग का व्यंग उत्तारोत्तर हास्य के दूर
होता चा रहता है । उसकी मित्रता साहित्यिक क्षेत्र में भी स्थापित हो चुकी है,
क्योंकि आज के जीवन संदर्भ में इससे प्रतीति घर कर गई है कि उन पर केवल धनी
कर ही नहीं रहता जा सकता । आज जीवन में जो निराशा अन्याय कूटन और लंबाई
भावना है उसके वास्तविक अभिव्यक्ति के लिए व्यंग का अवकां पूर्वांकित युगीन माँग
के तौर पर माना गया है ।

** पुरावे और पुहान :**

हमारे गोप विपश्ची ते पराक्षा तंबन्ध रखने के कारण व्यंग और पुहान के संबन्ध
की भी संक्षिप्त विवेचना यहाँ पर पूर्वांकित पूरीत होता है ।

1. हरिशंकर परसाई – "व्यंग दिया की कसौटी" टेढ़-व्यंग वाणीक, पटना,
क्षींति अंक, पुस्तक-26
Nit is an intellectual cleverness, which raises a smile, it may be unkind and unsympathetic.

2. Wit is the product of art and fancy.
Such resultant pleasure corresponds to the economy of psychic pleasure. (The Basic Writing of Sigmund Freud by Dr. A.A. Brill, Page-172)
व्यंग्य का क्षेत्र व्यक्ति और समाज का जीवन क्षेत्र है। जीवन के सभी आर्थ-क्षेत्रों तक व्यंग्य की व्याप्ति होती है। व्यक्ति और समाज का दैनिक आर्थ-व्यवसाय तथा सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक आचरण और व्यवसाय सभी कुछ व्यंग्य की परिधि में आते हैं।

मनुष्य के आर्थिक अंग के समय से ही मनुष्य तथा समाज में अध्यायाओं और बुराईयों रहती हैं। अध्यायों को पढ़ने में और प्रभाव जानने में प्रायः कठिनाई नहीं होती, पर बुराईयों का प्रभाव बहुत कम समय तक परिलक्षित नहीं होता। वे प्रायः जिंदी हुई रहती हैं और सामाजिक जन उन में लिंग होता जाता है। ये सभी समय समाज की उन बुराईयों की उद्धारित करना, उनके प्रभाव को स्पष्ट करना और समाज को सतेतल बनाना प्रायः व्यक्ति का कार्य रहता है। यह कार्य साहित्यकार समाज में रहते हुए अपने अंग्रेजी अनुभवों के आधार पर करता रहता है। व्यक्ति की निजी कमजोरियों पर तथा समाज की बुराईयों पर तीनों घोट करने हेतु निचले लक्ष की पूर्वत प्रायः असम्भव हो जाती है। व्यक्ति तीनों घोट का व्यक्ति या कर्म पर अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ता और बुराईयों तथा न्यूतारों के पूर्व तत्त्व छोड़ते होने के कारण इसलिए यह स्पष्ट लघु से उनकी कामना करने की बेश्ता करता है। इसलिए ऐसी स्थिति में "व्यंग्य" की उपयोगी होता है। यह सद्देश के जल में सामाजिक अर्थ के आदि में कमजोरी पर पुकार पुकार करता है। "व्यंग्य" की यही घोट समाज में घटता उत्पन्न करती है।

समाज एक पिकारोसस्पूकी संस्था है, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध आर्थ-व्यवसाय का समाजशास्त्र होता है। सामाजिक गतिविधियों के साथ-साथ मनुष्य के मन और व्यवसाय में निकट अन्तर्प्रेक्षियों की व्याख्या भी सामाजिक पूर्णगुणित पर ही की जा सकती है, क्योंकि अपनी समस्त न्यूतारों के होते हुए भी मानव ही समाज को बकारा है और नये घोट को जन्म देता है। साहित्यकार समाज लोगों के लघु से सामाजिक परिस्थितियों के साथ साथ मनुष्य के व्यवसाय एवं स्वभाव
के अन्तर्विरोधों और विसंगतियों को व्यंग्य का विषय बनाता है। पर "व्यंग्य" कर
सकने वा निश्चय सकने की क्षमता उसी के पास होती है, जो उन बुराइयों से दूर हो,
जिस पर व्यंग्य किया गया हो और जिसके पास आत्मा का बल हो। बर्न्स दा,
डिनायर बेलिक, वेंटर्टन आदि विश्व के केंद्र व्यंग्यकार ऐसे सकते साहित्यकार रहे हैं।

28 व्यंग्य का मनोवैज्ञानिक पूर्वः

पत्रों तो अद्यतन साहित्य-समीक्षा में मनोविज्ञान की उपलब्धताओं का अधिकारिक
सहारा लिया जाता है। व्यंग्य के किसी में भी मनोविज्ञानिकों का योगदान
मूल्यवान माना जाता है। मनोविज्ञान के पुराक में व्यंग्य रचना के मूल्यांकनों का
अनुगमन विशेष महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है।

शब्द के गम्भीर प्रयोग में भ्रम लगता है, पर उसे प्रचलन ल्या पर पुकार करने में
कुछ सुविधा होती है। "व्यंग्य" में शब्द का यही प्रचलन प्रयोग होता है जिनका
सम्बन्ध व्युत्पन्नता से माना जाता है। इसी कारण व्यंग्य को धात नवाकर घोट
करना भी माना जाता है। प्रयोग के अनुसार मानसिक शब्द की बजत है व्युत्पन्नता
का लघु मिलता है। मानसिक शब्द की बजत या स्थिति के दिसी और स्थिति
भावों की होती है। ध्वनि हामे के एक संदर्भ का शब्द दूसरे संदर्भ के शब्द कर
देता है, यही शब्द की मिति-प्रयत्न है। व्यंग्य के आधार में शब्द तथा उसके व्यवहार
की यही मिति-प्रयत्न होती है, इसलिए ध्वनि वर्धित के अनुसार "व्यंग्य बात की
संक्षिप्त और समृद्ध द्वारा व्यक्त कर अपने लक्ष्य पर तैयार होती है", पर व्यंग्य
द्वारा लक्ष पर तैयार होते हैं क्योंकि "व्यंग्य बात की पर्याप्त नहीं होती। उसे इस
हेतु व्युत्पन्नता का बल भी प्राप्त होना चाहिए, तभी घोट तीव्र और मानसिक
होगी। व्युत्पन्नता का आधार बौद्धिक शक्ति होती है। इसलिए व्यंग्य की हुदू वे
की अथवा वृद्धि को उपज माना जाता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यंग्य लिखनेवालों
1. ध्वनि वर्धित - मिति-प्रयत्न और व्यंग्य, पृष्ठ-76
में एक मौलिक और क्रांतिकारी व्यक्तित्व का आत्मवाद होता है । वे जीवन के लंबांश में पले होते हैं । समाज के यथार्थ की सत्य अनुभूति उन्हें सामाजिक अलगाव को साक्षा भाषा में अभिव्यक्ति करने की शक्ति देती है ।

सामाजिक क्षेत्र में लिखे गये व्यंग्य जीवन की विस्तृत भूमि में दोनों के परिवार के लिए इस निहित उद्देश्य को सामने रखकर कल्पना भावना से लिखे जाते हैं । इस पुरातन के साहित्य में भावात्मक पृष्ठभूमि के स्थान पर यथार्थवादी, बौद्धिक और जीवन की समीक्षात्मक दृष्टि होती है ।

व्यंग्यकार जीवन को अनावृत्त लघु देखता है । उसे जैसा है वैसा ही मिलता करता है । इस कारण जीवन की उपज कहीं चाहे भी नहीं होती ।

व्यंग्यकार सामाजिक साहित्य की अपेक्षा जीवन और समाज को पूले लेकर अधिक करोड़ होता है । उसका दृष्टि सामाजिक यथार्थ की दृष्टि होती है । इसलिए आक्षेप होता है कि व्यंग्य लेखक समाज से, समाज के यथार्थ से, तथा सामाजिक वैज्ञानिक से अधिक तात्विक दृष्टि स्थापित कर के, क्यौंकि पूर्व: सामाजिक क्षेत्र में यह यथार्थ और वैज्ञानिक उसके पुरातन का लक्ष्य होता है ।

जीवन में व्यक्ति का समय जब पाख़ंड, अधिक, निर्धारित और असामान्य पूर्ण आपराधिक व्यंग्य की अपराधिता व्यंग्य के चक्कर के दबाव में "क्रियात्मक व्यंग्य" जब वह शून्य कर सकते हैं अपने का असम्भव पाता है जब वह व्यंग्य की और पूर्वत होता है और व्यंग्य के माध्यम से उन बुराइयों की पूर्ति वह अपने अन्तर के भींत और आंधार को अवश्य करता है । इस तरह सामाजिक क्षेत्रों को सामना करने के लिए जब पूर्वात्मक साहित्य कर "व्यंग्य" को एक अंतर के त्यों में पूर्वगत करता है, तब "व्यंग्य उसके लिए नासिर में असति का भाव बन जाता है ।"

अतः व्यंग्य की समाजपर तार्किक स्पष्ट है । उसका योग सामाजिक की जड़ता

1. "नासिर में असति का भाव है व्यंग्य है"-गोपाल व्यंग्य, सामाजिक हिन्दुत्वात, 12 मार्च 1972 ई ।
Great satirists of course are more than merely angry, bitter or disappointed men. They are usually baffled idealists. — L.J. Potts, Comedy, Page 154.

"स्मृति की गति रोक देने वालों परम्परा की परतों को उखाड़ फेंकना है। वास्तव में व्यंग्य समाज से परिस्थित का यह मात्र है जो युग के अंतिम उसे बनाने के लि शल्यका करने का सन्दर्भ होता है ताकि जो कुछ पूरा ना पड़कर सड़ कुरा है उसको शल्य कर नये के लिए मार्ग बनाया जा सके।

व्यंग्यकार जब व्यक्ति के समय के पिता और व्यक्ति में विपक्षार्थी और विकासियों के देखा है तो उसका जी घायल है कि वह उन सबको तर्क दूर कर दें के सम्मान को अपने आकार के अनुसार बना दे। पर, ऐसा कर तकनी यह अपने को असम्भव पाता है तो वह व्यक्तिशांति का शर्त लेकर इस दिशा और विरोध परिस्थिति में परवर व्यंग्य बायो बसाकर सन्दर्भ कर लेता है। इत प्रकार व्यंग्य में वह अपने अति आकार का अभिव्यक्ति भी करता है और व्यंग्य करके वह पूरा निराशा मार कर वह आहत है, यह केवल बड़ा आशानी से पीछा छुड़ा लटका है तक अप मेरे व्यंग्य का लक्ष्य नहीं है।

"व्यंग्यकार को स्थिर और निराश व्यक्ति की अपेक्षा एक उद्देश्य आक्रमणीय कहा जा सकता है, जो वास्तविक और भोधित जीवन में अनुकूल देखकर वास्तविक जीवन पर प्रभाव करता है।" व्यंग्य मूल भी निराशा मात्र की उपज माना नहीं जा सकता. क्योंकि, निराशा तब होती है—जब विकास या विकास का अनुभव हो। व्यंग्य में व्यक्ति विकास का अनुभव तो करता है, पर जब उसको वह विकास जीवन के बौद्धिक रूप में राह नहीं पाता तो वह व्यंग्य के माध्यम से प्रभार की दूसरी राह निकाल लेती है। पनस्त्रिप तनाव या निराशा की भावना निरोजित हो जाती है, अन्तिम समय के हो जाता है और "व्यंग्य करके व्यक्ति का अद्यय संपूर्ण हो जाता है।"

1. "Great satirists of course are more than merely angry, bitter or disappointed men. They are usually baffled idealists."- L.J. Potts, Comedy, Page 154.
मनोविज्ञान के पुरोहित प्रायद्वंद्व ने जीवन को अन्तर्द्वंद्वों की रूपकता से बना माना है। उसके अनुसार अन्तर्द्वंद्व की व्यक्ति में संघर्ष की शक्ति को जन्म देता है, जिसमें अहम्, इंग्राह, तथा सुपर अहम् होता है। “अन्तर्द्वंद्व दो विरोधी इच्छाओं के एक दूसरे की तृणता के मार्ग में बाधा डालने की स्थिति को कहा जाता है।” इस प्रयास ने अहम् की भविष्यत क्षेत्र के रूप में की है। अल्पके विचार का कारण उससे कमतर या निराशा माना है, जिसका जीवन की वातावरणता से गहरा सम्बन्ध होता है तथा जिसके माध्यम से जीवन में व्यवहार का नियन्त्रण किया जाता है।

समाज में व्याप्त विस्माति और अन्तर्विरोध को देखकर जब पुरुष व्यक्ति उसका परिवार कर सकते में अपने को असमर्थ पाता है तो उसे निराशा होती है। इसी साथी प्रतिक्रिया उससे होती की भावना उत्पन्न करती है। प्रतिमुख मनोवैज्ञानिक "एल्स" ने इत "हीन भावना" को जीवन में बहुत सहजता पूर्ण माना है। उसके अनुसार "संरेखा में व्यवस्थित रूप से प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी हीन भावना का रिश्ता होता है, पर इसी हीनभेदन के कारण व्यक्ति में एक प्रेरणा का जन्म होता है जिसके पास तत्काल वह अन्य किसी माध्यम से उसकी सम्पूर्णता का प्रयास करता है।" 1

विस्मातियों के विरोध में क्रुः न कर सकने की स्थिति से उत्पन्न "हीन भावना" का प्रतिक्रिया व्यवहार क्रमसंगत व्यक्तिपति के माध्यम से करके अन्तर्द्वंद्व से उत्पन्न तनाव के मुक्ति भी पा लेता है और प्राप्त करने विभिन्न जैसी स्थिति का आनंद भी उठा लेता है।

व्यवहार के प्रयोग में पुरुष बुद्धि की अपेक्षा होती है। पर सामान्य बुद्धि वाले या व्यवहार के आदत व्यक्ति "व्यवहारकर" को सिसिल, विज्ञानवेत्ता, निराशावादी तथा

1. "Conflict means a situation in which two wishes are so incompatible that the fulfilment of one would preclude the fulfillment of other"—J.P.Brown—The psychodynamics of Abnormal behaviour—Page-162
2. डॉ. मानिलाल उपाध्याय, व्यवहार और भारतेन्दु युगीन गांधी, पृष्ठ-49
व्यंग्य की किती की बारिशा उमेजने वाला कहकर समाज में उसके महत्त्व को कम करने की चेष्टा भी करते रहते हैं। पर निस्संदेह यह व्यंग्य किती सिनिक या विद्वानवेशी की अकल से निकला हुआ कोई कसीदा या बेल लूटा नहीं है, जो क्षण भर के लिए आकर्षण करने रहा जाता है। व्यंग्य का प्रभाव व्यक्ति के अन्तररम की गहराई तक सम्भं बहस कर उसे साजिदा रहता है। व्यंग्य में "व्यंग्यकार" का आत्मबल और जीवन की गहन अनुभूति की अविस्मरणीय होती है। यह सत्य है कि "व्यंग्यकार" का व्यक्तित्व नहीं था। जो समाज की चुनौतियों को खुले आम स्वीकार करे और प्रथम के जीवन में उनसे जुड़े। उस व्यक्तित्व को उसे वेद बिश्वास्कर अपने का अर्पित कर देनेवाले महान समाज लेखी का ही हो सकता है। "व्यंग्यकार" तो अनावश्यक व्यक्तित्वपाला व्यक्तित्व होता है।

38. व्यंग्य का स्वप्न एवं पुकार:

व्यंग्य की सही पहचान-परब वेदिके व्यंग्य के विविध पुकारों का परिचयात्मक अवलोकन नागदायक है। इस दृष्टि से आपने पर व्यंग्य के निम्न लिखित पुकार माने जाते हैं।

शास्त्री दृष्टि से व्यंग्य तीन पुकार के माने गये हैं—

1. वस्तु ल्यू 2. अलंकार ल्यू 3. रस ल्यू।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हीं पुकारों को वस्तु व्यक्ति, अलंकार व्यक्ति और भाव व्यक्ति के ल्यू में रखा है।

शास्त्रीय दृष्टि के अनुसार यदि हम सामाजिक दृष्टि से विचार करें तो व्यंग्य के दो मुख्य ल्यू होंगे—

1. व्यक्ति परदा व्यंग्य — जिसका सम्बन्ध व्यक्तिगत जीवन से होता है, जो त्यं उन्हें भी किया जा सकते हैं और दूसरे पर भी।
समाजपरक व्यंग्य - जिनके अन्तर्गत सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और साहित्यिक सभी प्रकार के व्यंग्य हैं, जो इन क्षेत्रों की न्यूनताओं पर घोट करते हैं।

अभी-अभी साहित्यकारों में किसी व्यंग्य को "गम्भीर" और किसी को "दरबारी" कहने की परंपरा भी बड़ा पड़ी है। दरबारी व्यंग्य यानी जो शासकों की स्तुति के लिए लिखा जा रहा हो, जन सामाजिक केलिए नहीं। पर वास्तव में व्यंग्य का ऐसा कोई स्थान नहीं माना जा चुका। यह ठीक है कि हम समाज के स्तरों के बीच तड़के निकालकर रहे हैं ताकि जनविनोद अवस्था रहे। जनता दिग्गज ने रहे और अपने त्वारिकों के द्वारा प्रयोग न कर सके।

"व्यंग्य" तो अपने समाज लुभार पर उद्देश्य के कारण तक हम गम्भीर ही रहेगा भी ही उसमें हास्य और विनोद का पूरा हो। अतः हमारी दृष्टि में उद्देश्य के अनुसार ही "व्यंग्य" का व्यक्तिकरण किया जाना चाहिए।

पैतृ का उपर लिखा जा पुका है, "व्यंग्य" के दो मुख्य स्थ होते हैं। व्यक्तिक पर्यावरण के समाज पर्यावरण समाजपरक व्यंग्य के अन्तर्गत निम्न प्रकार के व्यंग्य आते हैं-
1. पिनोदात्मक
2. सुधारात्मक
3. साहित्यिक

साहित्य में जब व्यक्तिपरक व्यंग्य का उद्देश्य सामाजिक व्यंग्य था था तो उसमें भी ये तीनों श्रेणी हो गई।
1. पिनोदात्मक व्यंग्य - जिस प्रकार के व्यंग्य का कोई सामाजिक उद्देश्य नहीं होता। ये पूर्व हास्य और पिनोद के निमित्त किये जाते हैं। देशी व्यवहार तथा पारिस्थितिक शुभ अवसर जैसे विवाह इत्यादि में दिये जानेवाले उपालम्ब, तान, परिहासात्मक बातें इसी प्रकार के व्यंग्य के अन्तर्गत आती हैं। साहित्य में भी ऐसे
व्यंग्यात्मक निबंध मनोरंजन के उद्देश्य से लिखे जाते हैं। वे व्यक्तिपर भी हो सकते हैं और समाजपर भी।

1. सूचरात्मक व्यंग्य - इस प्रकार के व्यंग्य सामाजिक चेतना उत्पन्न करने, कुरौतियों का विक्षेपण करने तथा व्यक्ति एवं समाज को उन्नत बनाने के निषिद्ध उद्देश्य से लिखे जाते हैं। इन्हें रचनात्मक व्यंग्य भी कहा जा सकता है। यास्त लावेल का बौद्धिक व्यंग्य इसी कोटि में जिसे तात्त्विक 'ज्ञेय व्यंग्य' है जो व्यक्तित्व या नैतिक विरोध से शक्ति ग्रहण करता है ताकि व्यक्ति और उससे बने समाज का सूधार हो सके। ऐसे व्यंग्य में "लावेल" कतियाँ, चुटियाँ और बुराइयाँ पर परिहास का भाव आचारक मानता है।

3. ध्वंसात्मक व्यंग्य - ऐसे तो साहित्यका उद्देश्य ही समाज की उन्नतिविही होता है और वह समाज के सिद्ध ही लिखा जाता है, पिर भो ही वेलक लेख उसे, "स्वातन्त्रता" लिखा हुआ माना करे। पर जब ऐसा व्यंग्य लिखा जाता है, जिसमें सामाजिक व व्यक्तिगत चित्रणों के ध्वंस की इच्छा निहित होती है तथा जिसमें कड़ुता, तिकता और आकृत्तिक अधिक हो तो उसे ध्वंसात्मक कोटि का व्यंग्य ही कहें। कड़ुता एवं आकृत्ति ध्वंस की अधिक करेगा, निर्माण या सूधार कम। ऐसे हर, "ध्वंस" में नव निर्माण की भावना निःसी रहती है, पर यहाँ "ध्वंस" ही पूर्वाला भाव है, नव निर्माण अप्रत्यक्ष में रह जाता है, लेकिन अप्रत्यक्ष में उसकी कोई नहीं करता।

साहित्य की कसौटी सामाजिक चेतना है। वैश्विक अनन्द प्रदान करनेवाला साहित्य भी अन्तः सामाजिक चेतना का ही वाहक होता है। व्यंग्य साहित्यकार

---

1. "Intellectual satisergets its force from personal or moral antipathy ............ The Employment of sarcasm, irony or keenness of wit in ridiculing vices, abuses or evils of any-kind ridicule whether caustic or simply humourous exaggeration as a speech full of satire-Standard Dictionary of English language-I.K.Funk, Vol.2, Page-1584
व्यक्ति और समाज में व्याप्त विकार, आकर्षण और प्रभाव पर संयोजित प्रभाव करते समय अपनी व्यक्तिक अनुभूतियों के साथ समाज पर दृष्टि का ही उपयोग करता है। उसके लिए व्यंग्य ऐसा कुशल साधन है, जिसमें वह अपने हृदय को भावो-भावी अभिव्यक्ति कर सकता है। व्यंग्य का लक्ष्य भी ही व्यक्ति हो या समाज, पर उसका उद्देश्य निर्मित होता है।

कृत्तियाँ व्यक्तियों की दृष्टि में "व्यंग्य" कहने का सा ठहरता है जिसमें वास्तविक स्थिति से बदलकर कोई बात कही जाती है। पर यदि हम "व्यंग्य" को नैतिक मात्र ही मानें तो यह अस्थायी उपचार के अन्य फिरने के क्षेत्र को कृत्तियों, अंतर्ज्ञातों और अन्तर्विद्याचारों पर रहती है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति में लेख की वाणी ऊपर से बिस्तर और मधुर होती है, पर उसकी उत्स फिरती और मधुरता में गहन और तीखी मार की चुम्मा भी होती है।

48. हिंदी साहित्य में व्यंग्य परंपराएँ:

हिंदी के प्रारंभिक युग के साहित्य में भी व्यंग्य और हास्य का स्वाभाविक अभाव नहीं है। प्रारंभिक स्थिति में कोई भी साहित्य स्तर और सुनिश्चित नहीं होता। अतः हिंदी में हास्य और व्यंग्य मिले-पुले होते हैं। अपने विकास के प्रारंभिक युग में हिंदी साहित्यकार समाज को अपेक्षा व्यक्ति के प्रति अधिक प्रतिबद्ध था। तात्पर्य के अंकुर तो पूर्ण प्रारंभ हो रहे थे। अतः यह स्फुर्ति है कि उन समय में वह कृषि किया गया, हमें हास्य अधिक होता और व्यंग्य कम। जो भी "व्यंग्य" उपलब्ध होता है उसका लक्ष्य व्यक्तिगत दृष्टिकोण ही है, तात्पर्य के परिस्थितियों और किरातियों नहीं।

हिंदी के प्रारंभिक वीरगाथाकालीन साहित्य के युग में पराशुराम, शंकरश्व और हर प्रकार की वेतना से विद्वान राजव्यवस्थापन की ओर पीड़ा भोग रहा था।
संस्कृति और शौच के क्षेत्र में विवाह का आदित्य राज्य "भारत" जब पराजय की अव्यक्ति से शुरू हुआ हो, तब साहित्यकारों की साहित्य में सामाजिक व्यंग्य के दर्शन के संबंध हो सकते थे ९ फलस्वरूप जो भी थोड़ा बहुत व्यंग्य मिलता है उत्तर का स्वार व्यक्तिपरक है। समाज के संरक्षक के दर्शन हास-विलास और झूठे गल्यों की भावना से लिप्त हों, अपनी पराजय को बुझता रहे हैं, तब साहित्यकार ते यह अपेक्षा करना कि वह "व्यंग्य" की पैनी धार से उनका खौफाना उठाए देगा, एक असंभव कल्पना है।

हिन्दी साहित्य में दोरघाटाकाल से वर्तमान तक व्यंग्य रचना धूनाधिक रूप में सदैव होती रही है। यथापि उसका रूप प्रारम्भ में व्यक्तिवादी ही रहा है। सत्य, सच्चिदानन्द और नाथधारी साहित्यकारों द्वारा यदा-कदा किया गया व्यंग्य बहुत कृष्ट इसी कोटि का है। पर उनमें अपने उपर "व्यंग्य" कर सकने की क्षमता अधिक थी।

भक्तिकाल तक आते-आते जनता विदेशी शासन को स्वीकार कर पुकी थी। इसकी गान गानेवाला राज्य पराजीतता को अपना भाग्य मन कुरा था। अतः इस युग में आत्मनी, परिस्थितियों से पलायन, आत्ममोक्षी और हीनता के घोष हो लुप्त पड़े हैं साथ ही लुप्त हो जाती है भावना की स्वरूपिता।

सामाजिक और राजनैतिक विचार के स्वर, संत कबीर और संत लुसीवेदास तक ही सर्वित है। अन्य कवियों में ये स्वर अनेक मुख्य नहीं हैं, पर जहाँ यह स्वर तक व्यंग्य का प्रमाण है, "सूर" और "लुसी" ते लेकर यथार्थवादी व्यक्तित्व "कबीर" तक के साहित्य में पर्याप्त मात्रा में व्यंग्य मिलता है। "सूर" का अपने उपर व्यंग्य, भ्रमणीत में गोपियों का कृत्ति पर व्यंग्य व्यक्तित्व है। सूर और लुसी ने सामाजिक और नीति जीवन पर भी व्यंग्य किये हैं। इस रूपसे लुसी के अधिक व्यक्तित्व है। वे समाज की बुद्धि के पर "व्यंग्य" करके ही संतुष्ट नहीं होते बल्कि समाज को रामराज्य का आदर्श भी देते हैं। इन सबके अन्य "कबीर" एक यथार्थवादी व्यक्तित्व है। कबीर ने
युग की विभमताओं को निकल से भोगा और समझा था। उन्होंने इन पर "व्यंग्य" के माध्यम से जमकर वाट को है। वास्तव में कवि की सामाजिक वेतना और पुन बोध हि "भारतेन्दु युग" में आकर पुनः करवट लेता है। मध्ययुगीन साहित्य में कवि का साहित्य में ही साहित्यिक व्यंग्य की गरिमा और रूढ़क्षब सर्वसिद्ध कृत्व्रत्य है।

राष्ट्रीय कालीन युग भी "व्यंग्य" से अच्छा ही नहीं है। साहित्य के वृन्दामार्क होते हुए भी बड़ा, होती, अन्यों, विकास, विकास, जिसंग अभिधारण का विकास प्रारम्भिक रूपों के माध्यम से व्यंग्य, कटौतियाँ, आक्षेप और कटाक्ष किये गये हैं। धी सह का लक्ष्य नितांत वैश्विकिक है। समाज और उसकी विभमताओं से इस युग के साहित्य का बहुत कम सम्बन्ध है। इस युग के कवि का सात्ता वातृपय, नाभिक और नाटिका के हास-परिहास प्रकार के हृदय, और प्राकृतिक सीमन्द्र के विज्ञान में ही पुनः जाता है।

समाज की और दृष्टिकोण करने का उसे ध्यान ही नहीं रहता।

56 डिन्दी गय साहित्य का विकास और उसमें व्यंग्य के विकास की परग्रस्तियतियाँ

हिंदी गय का पारंपरिक वर्ण परी भारतेन्दु हरिचंद्र के पूर्ण हो चुका था, फलतः उसे विभमतिक भ्रम भारतेन्दु युग में तब पुराप्त हुआ, जब गय अपनी अनेक विधाओं-नाटक, निबंध, कहानी, चित्राय, आलोचना आदि में व्यवस्था और प्रवाहायमन हुआ और जब उसकी शैली में व्यंग्य का दृष्टिकोण हुआ।

हिंदी गय साहित्य के विकास में, भारतेन्दु के पूर्ण, जहाँ एक और मुन्यों सदासुखाल, इसागुल्लाही, तस्क मिश्र, और ललनलाल जैसे व्यसन साहित्यकारों के प्रयत्न थे, तो दूसरी और ईसाई मिशनरियों, बुद्धसाधियों, आस्थासाधियों तथा सनातन धर्मियों का भर्ष पुराप्त होता लिखा गया गय साहित्य तैयार हो रहा था।

1800 ई. तक हिंदी में गय का पारंपरिक मात्र हो चुका था और उससे भी जो कुछ लिखा गया था, वह साहित्यिक दृष्टि से नगण्य था ही था।
भारतेन्दु के पूर्व राजा लक्ष्मण सिंह ने गध के क्षेत्र में महत्वपूर्ण तेज़ी की थी। भारतेन्दु ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश करते ही भाषा के स्वरूप को निरंतर किया। उनकी पुराण से हिंदी में अनेक पत्र पत्रिकाओं प्रकाशित होने लगीं और उत्साही व्यक्ति तात्त्विक सूचना के क्षेत्र में विकसित होने लगी। जिन साहित्यकारों ने भारतेन्दु की पुराण से गध साहित्य के क्षेत्र में तृज्ञ प्रारंभ किया तथा उन्हें से प्रमुख थे पं. बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, राधाचरण गोपालामूल आदि।

भारतेन्दु एवं उनके सहयोगी साहित्यकार जब गध की और उन्मूख हो, हिंदी गध को नवीन विधाओं-नाटक, आख्यान, निबंध, आलोचना आदि से समृद्ध बनाने के महान कार्य में जुटे हुए थे, तब भारत 1857 ई. के स्वतंत्रता पुख्त की पराजय की पोखरा भोग रहा था। इस पराजय के बन-मानन को पूरी तरह हताश कर दिया था। वाराणसीमें तो पारस्परिक पूर्व से विपरीत हो भारतीय राजा शुल्क साम्राज्य से पराजित हुए थे। पर 1857 ई. की पराजय तो इस दृष्टि से अभावपूर्ण था। भारतीय संस्कृति में पहली बार स्वतंत्रता के संस्कृतियत पुख्त किया गया और इस पुख्त में भारत पूरी तरह परलोकत के पास में आक्क दिया गया। भारतीय संस्कृति पर पार्शवात्य संस्कृति की तीर्थ बोधों होने लगी जिनसे पराजित भारतीय का आहत अत्यंतार और भी अधिक आहत हो गया।

पार्शवात्य संस्कृति के समाप्त ते भारतीयों ने पहली बार अपने को सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से दूर अनुभव किया। जल्द यह स्वाभाविक ही कि साहित्यकारों का प्रबुद्ध वर्ण, जनता में समाजसेवा की वैतन स्फुरित भर, ताकि भारतीय जनता अन्धिकारों, गांवनुतकियों रंग साधारणों से मुक्त हो नवीन सामाजिक और राजनीतिक चुनौतियों का साझा कर सके।

यह कार्य न तो उपदेशों द्वारा सम्भव था और न सीधे प्रहार था। प्रहर स्वश्रुत
जैसे कानून तथा अशीषी शासन का दमन एक स्वतंत्र अभिव्यक्ति में बाधक थे। पिछले
एक पराधीनता तथा आकांक्षा राष्ट्र के नागरिक शासकों की सामाजिकवादी शासन पर
तीन प्रहार कर भी कैसे लक्ष्य थे? अतएव अपनी ही कुरानियाँ, न्यूनताओं, अंध-
विवादासों आदि के साथ साथ शासन की आर्थिक शोषण की दौड़ी पर निष्ठुरतापूर्वक
प्रहार करने के लिए भारतेन्दु युग के साहित्यकारों ने "व्यंग्य" का यह मार्ग चुना।

प्रसंसित अध्याय में व्यंग्य साहित्य के स्तर और प्रकारों का परिप्रेक्ष्यक
विकास किया गया है; साथ ही व्यंग्य संरक्षण के सामाजिक, शास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक
और संस्कृतिवादियों का अनुशीलन भी किया गया है। हिन्दी साहित्य में
व्यंग्य परंपरा का भी सर्वेक्षण किया गया है। अगे हिन्दी नाटक के उद्भव और
विकास की भूमिका में हिन्दी नाटक-साहित्य में व्यंग्य का प्रमुख तथा उसकी विकास
वातावरण का परिप्रेक्ष्य देने का प्रयास किया जाएगा।

***************